दुर्गाप्रसन्न त्रिपाठी

बनाम

अरूंधति त्रिपाठी

23 अगस्त, 2005

(रूमा पाल और डॉ. एआर लक्ष्मनन, जे.जे.)

हिंदू विवाह अधिनियम, 1955- धारा 13 (1)- 07 माह के भीतर विवाह का विघटन हो गया। पारिवारिक न्यायालय ने पत्नी द्वारा की गयी क्रूरता और परित्याग के आधार पर पति को तलाक की डिक्री पारित की। पति को निर्देश दिये कि वह 50,000/-रूपये स्थायी भरणपोषण के रूप में अदा करे। अपील में उच्च न्यायालय ने तलाक की डिक्री को अपास्त किया। अपील में अभिनिर्धारित किया : पक्षकार गत 14 वर्षों से पृथक रह रहे हैं। विवाह अपरिवर्तनीय रूप से टूट गया है. पुनर्भरण और सुलह की कोई सम्भावना नहीं है.इसलिएए विवाह का विघटन उचित है. यद्यपि स्थायी भरणपोषण की राशि को बढ़ा कर 1 लाख रूपये किया गया। (धारा 19-पारिवारिक न्यायालय अधिनियम, 1984, अनुच्छेद 142-भारतीय संविधान)

पारिवारिक न्यायालय ने हिंदू विवाह अधिनियम 1955 की धारा 13 के तहत अपीलार्थी पति द्वारा प्रस्तुत याचिका को स्वीकार किया और उसे क्रूरता और त्याग के आधार पर तलाक की डिक्री पारित की। यद्यपि,

अपीलार्थी को निर्देश दिये कि वह अपनी प्रत्यर्थी/पत्नी को स्थायी भरणपोषण के रूप में 50,000/-रूपये अदा करे। अपील में, उच्च न्यायालय ने, पारिवारिक न्यायालय द्वारा पारित तलाक के आदेश को रद्द कर दिया, यह अभिनिर्धारित किया कि अपीलार्थी, प्रत्यर्थी के विरूद्ध क्रूरता और परित्याग को साबित करने में असफल रहा। इसलिए वर्तमान अपील।

अपील को अनुमति देते हुए न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया -

1- उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी के विरूद्ध दो बिंदुओं पर निर्णय दिया, अर्थात्ः- पारिवारिक न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी की साक्ष्य का गलत विवेचन किया गया; और अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी के वैवाहिक घर को छोडने के सम्बंध में गलत अभिवचन लिया गया। उच्च न्यायालय द्वारा विचार में लिए गए उपरोक्त दोनों बिंदुओं को गुणावगुण के आधार पर एक निष्कर्ष के रूप में नहीं लिया जा सकता है।

2.1. पारिवारिक न्यायालय ने अपीलार्थी के पक्ष में तलाक की डिक्री पारित करने के ठोस और विश्वसनीय कारण दिए। इसने एक स्पष्ट निष्कर्ष दिया कि सुलह करने के लिए बहुत प्रयास करने के बावजूद उत्तरदाता के अपने ससुराल वालों से अलग रहने के आग्रह के कारण यह प्रभावी नहीं हो सका, जो पूरी तरह से एक अनुचित समाधान था। वहीं आज तक प्रत्यर्थी ने अपने वैवाहिक घर वापस जाने के लिए अपनी ओर से कोई कदम नहीं उठाया है। उक्त तथ्य पारिवारिक न्यायालय के समक्ष उसके अपने बयान से

परिलक्षित होता है।

2.2. यह आश्वस्त होने के बाद कि विशेष रूप से प्रत्यर्थी द्वारा महिला आयोग में परिवाद प्रस्तुत किये जाने के कारण पक्षकारान के मध्य पुनस्र्थापना और सुलह की कोई सम्भावना नहीं थी, पारिवारिक न्यायालय ने उभय पक्ष के बीच की कडवाहट को शांत करने की दृष्टि से तलाक की डिक्री पारित किया जाना सही था।

3.1.अपीलार्थी द्वारा महिला आयोग के समक्ष के परिवाद की दहेज उत्पीडन के सम्बंध में अनुपालना नहीं की गयी। हालांकि पारिवारिक न्यायालय के समक्ष अपने साक्ष्य में प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी पर दहेज उत्पीडन का आरोप लगाया है। हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13 के तहत अपीलार्थी द्वारा दायर आवेदन पर पारिवारिक न्यायालय द्वारा नोटिस जारी किए जाने के बाद ही शिकायत दर्ज की गई थी। प्रत्यर्थी के ससुराल वालों द्वारा उत्पीड़न एक विचार के बाद था क्योंकि यह विवाह के 7 साल के अंतराल और प्रत्यर्थी द्वारा त्याग के बाद आरोप लगाया गया था।

3.2. प्रत्यर्थी ने अपने साक्ष्य में इस तथ्य पर विवाद नहीं किया था कि अपीलार्थी और उसके परिवार द्वारा अपीलार्थी के साथ वैवाहिक जीवन जीने के लिए उसे वैवाहिक घर में वापस लाने के प्रयास किए गए हैं। अपीलार्थी प्रत्यर्थी को उसके वैवाहिक घर वापस लाने के अपने प्रयासों में विफल रहा और उसे प्रत्यर्थी के बिना अपने मृत पिता का अंतिम संस्कार

करने के आघात का सामना करना पड़ा और प्रत्यर्थी द्वारा उसके और उसके परिवार के साथ किए गए दुर्व्यवहार का सामना करने के कारण उसके पास तलाक की डिक्री के लिए पारिवारिक न्यायालय का दरवाजा खटखटाने के अलावा कोई अन्य प्रभावी उपाय नहीं था।

3.3. अपीलार्थी ने पारिवारिक न्यायालय के समक्ष परित्याग के तथा साथ ही साथ पृथक्करण के आवश्यक तत्वों को साबित किया। इसके अलावा अपीलार्थी द्वारा पारिवारिक न्यायालय के समक्ष प्रत्यर्थी द्वारा की गयी क्रूरता के पर्याप्त घटनाक्रम को उद्धत किया गया और पारिवारिक न्यायालय द्वारा आश्वस्त होने के उपरांत तलाक की डिक्री पारित की गयी।

सनत कुमार अग्रवाल बनाम नंदिनी अग्रवाल, [1990] 1 एस. सी. सी. 475; अध्यात्म भट्टर अलवर बनाम आध्यात्मिक भट्टार श्री देवी, [2002] 1 एस. सी. सी. 308 और जी. वी. एन. कामेश्वर राव बनाम जी. जबिल्ली, [2002] 2 एस. सी. सी. 296, पर भरोसा किया।

4.1. पक्षकारान 07 माह से अधिक अपने वैवाहिक संबंधों को आगे नहीं बढ़ा सके। अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के अलग हुए 14 साल बीत चुके हैं और अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के सामान्य वैवाहिक जीवन को फिर से शुरू करने की कोई संभावना नहीं हैए भले ही प्रत्यर्थी अपने पति के साथ शामिल होने के लिए तैयार हो। अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच विवाह का अपरिवर्तनीय विघटन हुआ है। पुनस्र्थापना असंभव है। इस मुकदमे में दोनों

पक्षों के जीवन का एक अच्छा हिस्सा बर्बाद हो गया है। पक्षकारान इस स्तर पर खुद को सुलझा नहीं सकते हैं और भूलकर एक साथ नहीं रह सकते हैं। उनका अतीत एक बुरे सपने के रूप में है। इसलिए उच्च न्यायालय के फैसले को अपास्त कर दिया जाता है और तलाक के लिए डिक्री देने वाले पारिवारिक न्यायालय के आदेश की पुष्टि की जाती है।

अंजना किशोर बनाम पुनीत किशोर, [2002] 10 एस. सी. सी. 194 और स्वाति वर्मा (श्रीमती) बनाम राजन वर्मा और अन्य, [2004] 1 एस. सी. सी. 123, पर भरोसा किया।

4.2. पारिवारिक न्यायालय ने अपीलार्थी को 50,000/-रूपये प्रत्यर्थी को स्थायी भरणपोषण के रूप में अदा करने के निर्देश दिये। जिसको अपीलार्थी ने जमा करा दिया था। पक्षकारों की स्थिति और अपीलार्थी की आर्थिक स्थिति पर विचार करते हुएए जो आपराधिक अभियोजन का सामना कर रहा है और नौकरी से बाहर है और नौकरी करने वाली पत्नी की स्थिति पर भी विचार करते हुएए स्थायी गुजारा भत्ता के रूप में एक लाख रुपये की अतिरिक्त राशि न्याय के उद्देश्यों को पूरा करेगी।

चंद्रकला त्रिवेदी (श्रीमती) बनाम डॉ. एस. पी. त्रिवेदी, [1993] 4 एससीसी 232; बनाम भगत डी. भगत (श्रीमती), [1994] 1 एस. सी. सी. 337 = ए. आई. आर. (1994) एस. सी. 710 और रोमेश बनाम सावित्री, ए. आई. आर. (1995) एस. सी. 851 = (1995) ए. आई. आर. एस. सी.

डब्ल्यू. 647 पर भरोसा किया।

सिविल अपीलीय न्यायनिर्णयः सिविल अपील सं. 5184/2005.

उड़ीसा उच्च न्यायालय सी. ए. सं. 10/2001 में के के निर्णय और आदेश दिनांक 23.12.2003 से।

रंजन मुखर्जी और एस. मोहंती, अपीलार्थी की ओर से।

सुश्री एस.एस. पनिकर और भारत संगल, प्रत्यर्थी की ओर से।

न्यायालय का निर्णय डॉ. ए. आर. लक्ष्मणन, जे. द्वारा पारित किया गया।

अवकाश स्वीकृत किया गया।

यह अपील, प्रत्यर्थी/पत्नी द्वारा क्रूरता और परित्याग के आधार पर हिन्दु विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13(1) के तहत प्रस्तुत सिविल अपील संख्या 10/2001 में उडीसा उच्च न्यायालय कटक द्वारा पारित निर्णय दिनांक 23.12.2003 के विरूद्ध निर्दिष्ट है।

अपीलार्थी एवं प्रत्यर्थी के मध्य दिनांक 05.3.1991 को विवाह सम्पन्न हुआ था। विवाह के पश्चात् उभय पक्ष द्वारा अपीलार्थी के गांव में दाम्पत्य जीवन व्यतीत किया और प्रत्यर्थी पत्नी द्वारा अपीलार्थी को अपने माता-पिता के स्थान भुवनेश्वर में, जहां वह नौकरी भी करता था, रहने के

लिए मनाया। पति द्वारा उक्त प्रस्ताव के लिए सहमति नहीं दी, जिससे उभय पक्ष के मध्य विवाद उत्पन्न हो गया। यह आक्षेप लगाये कि प्रत्यर्थी/पत्नी अपने पति और ससुराल वालों के साथ क्रूर व्यवहार करती थी। दिनांक 20.10.1991 से अपीलार्थी को छोड कर, वह अपने माता-पिता के घर रहने लगी। अपीलार्थी और उसके माता-पिता ने प्रत्यर्थी को अपने घर लाने के लिए सर्वोत्तम प्रयास किये किन्तु सभी प्रयास विफल रहे। उसके पश्चात् दिनांक 26.05.1996 को अपीलार्थी के छोटे भाई का विवाह का कार्यक्रम के लिए अपीलार्थी की माँ भी प्रत्यर्थी को लाने के लिए गयी किन्तु वह आने की इच्छुक ही नहीं थी। किन्तु उसने अपनी सास के साथ दुर्व्यवहार कर उन्हें अपमानित किया। अपीलार्थी के पिता का देहांत हुआ और जिसके लिए अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी के पिता को भी अनुरोध किया कि प्रत्यर्थी उनके घर की बडी बहू है, उसे भेज दें तब भी प्रत्यर्थी नहीं आयी। अपीलार्थी के पिता के देहांत के बाद भी अपीलार्थी एवं उसके परिवार ने प्रत्यर्थी को लाने के लिए कई बार आग्रह किया उसके बावजूद भी प्रत्यर्थी, अपीलार्थी के साथ नहीं आयी। इसके अतिरिक्त प्रत्यर्थी पुरी में नागरिक आपूर्ति कार्यालय से जुड गयी। इसको दृष्टिगत रखते हुए प्रत्यर्थी एवं उसके पिता ने अपीलार्थी को भुवनेश्वर स्थानांतरित होने के लिए सदैव जोर दिया। अपीलार्थी ने पृथक्करण की तारीख से करीब 7 वर्ष बाद न्यायालय का सहारा लिया। अपीलार्थी के परित्याग के पश्चात् प्रत्यर्थी भी नागरिक आपूर्ति निगम के कार्यालय में कनिष्ठ सहायक के रूप में नियुक्त हो गयी।

प्रत्यर्थी/पत्नी द्वारा स्वयं के उपर लगाये गये आरोपों से इंकार किया। उसने अपने लिखित कथन में यह कथन किया कि अपीलार्थी एवं उसकी माँ व भाई के दुर्व्यवहार के कारण वह अपने माता-पिता के घर वापस आ गयी। उसने यह भी कथन किया कि वह अपनी सास व देवर से पृथक रहने को तैयार है, इसलिए उसने कार्यवाही को अपास्त किये जाने का निवेदन किया।

उभय पक्ष ने अपने-अपने मामले के समर्थन में मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत की। अपीलार्थी की ओर से स्वयं को पी.ड.01 के रूप में परीक्षित कराया गया। उसने अपनी साक्ष्य में तलाक के लिए प्रस्तुत मूल आवेदन के तथ्यों की पुष्टि की। उसने यह भी कथन किया कि वह करीब 9 वर्ष तक लम्बी अवधि से पृथक रहने के बाद, प्रत्यर्थी के साथ पति-पत्नी के रूप में रहने का इच्छुक नहीं है तथा पक्षकारान के मध्य पुर्नस्थापना की कोई सम्भावना भी नहीं है। प्रत्यर्थी स्वयं ओ.पी.ड.01 के रूप में न्यायालय में परीक्षित कराया गया। उसके द्वारा कई दस्तावेजात भी प्रस्तुत किये गये। पक्षकारान के अभिवचनों एवं साक्ष्य के आधार पर न्यायालय के समक्ष यह विवाद्यक विरचित किया गया कि क्या क्रूरता और परित्याग के आधार पर प्रत्यर्थी पत्नी के विरूद्ध तलाक की डिक्री पारित किये जाने के उचित एवं पर्याप्त कारण है अथवा नहीं?

पारिवारिक न्यायालय कटक द्वारा अपना निर्णय पारित किया और अपीलार्थी की ओर से हिन्दु विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 के तहत प्रस्तुत याचिका को स्वीकार किया गया तथा तलाक की डिक्री दे दी गयी। पारिवारिक न्यायालय द्वारा उभय पक्ष को सुने गये एवं पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का अवलोकन किये जाने के बाद निम्न निर्णय पारित किया गया:-

> ''जब प्रत्यर्थी/पत्नीे द्वारा वैवाहिक घर में आने से इन्कार कर दिया, तो निश्चित रूप से इससे याची/पति को मानसिक सदमा लगा, जिसकी कोई सीमा नहीं है। पक्षकारान के मध्य पुर्नस्थापना या सुलह की कोई सम्भावना भी नहीं है। प्रकरण को समाप्त करने के लिए न्यायालय के पास एक मात्र रास्ता, तलाक की डिक्री पारित करना है। अपीलार्थी/पति द्वारा न्यायालय में संतोषप्रद यह साबित किया है कि प्रत्यर्थी/पत्नी न केवल क्रूर है, बल्कि सात वर्ष से अधिक समय से उसको परित्यक्त भी कर रखा है, जो कि तलाक की डिक्री पारित करने के लिए अच्छा आधार है।''
>
> ''यद्यपि भरणपोषण के सम्बंध में विद्वान न्यायाधीश द्वारा याची/पति को निर्देश दिये गये कि वह प्रत्यर्थी/पत्नी को

स्थायी भरणपोषण के रूप में 50,000/-रूपये का भुगतान करे, जिसे बैंक ड्राफ्ट के रूप में भुगतान/जमा कराना था।''

पारिवारिक न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर, अपीलार्थी द्वारा धारा 19 पारिवारिक न्यायालय अधिनियम, 1984 के तहत उडीसा उच्च न्यायालय के समक्ष एक सिविल अपील प्रस्तुत की।

अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष तर्क दिया कि क्रूरता और परित्याग के आधार पर हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13(1) के तहत कार्यवाही की अनुमति देते हुएए पारिवारिक न्यायालय ने 05.03.1991 को दोनों पक्षों के बीच हुए विवाह को भंग कर दिया और अपीलार्थी को निर्देश दिया है प्रत्यर्थी को स्थायी भरणपोषण के लिए 50,000/- रुपये की राशि का भुगतान करने के लिए और इस निर्देश के अनुसारए अपीलार्थी ने बैंक ड्राफ्ट के माध्यम से राशि जमा कर दी है।

उच्च न्यायालय ने अपने निर्णय दिनांक 23.12.2003 के द्वारा पारिवारिक न्यायालय द्वारा पारित तलाक की डिक्री को अपास्त कर दिया और प्रत्यर्थी द्वारा प्रस्तुत अपील को यह कहते हुए स्वीकार कर लिया कि अपीलार्थी प्रत्यर्थी के विरूद्ध क्रूरता और परित्याग साबित करने में विफल रहा है।

उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकरए अपीलार्थी ने उपरोक्त विशेष अनुमति याचिका दायर की।

हमने अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री रंजन मुखर्जी और प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता सुश्री एस.एस.पणिक्कर को सुना।

अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री रंजन मुखर्जी ने प्रस्तुत किया कि उच्च न्यायालय यह समझने में विफल रहा है कि प्रत्यर्थी दूर रहने के कथित कारणों को साबित करने में विफल रहा और वैवाहिक घर लौटने के लिए निरंतर दायित्व का निर्वहन करने के लिए तत्परता और इच्छा प्रदर्शित करने में चूक हुई। कई मामलों में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों के अनुसार पत्नी द्वारा कानूनी परित्याग को साबित करने के लिए आवश्यकए शत्रुता स्थापित करने के लिए पर्याप्त थे। वह आगे यह भी प्रस्तुत करेगा कि अपीलार्थी ने निचली अदालतों की संतुष्टि के अनुसार प्रत्यर्थी.पत्नी के परित्याग को साबित कर दिया है और परित्याग के समर्थन में दिए गए सभी पहलुओं और सबूतों पर विचार करने के बादए पारिवारिक न्यायालयए स्वयं को संतुष्ट करने के पश्चात् कि दोनों के बीच पुनस्र्थापना संभव नहीं हैंए तलाक की डिक्री पारित कर दी है और पारिवारिक न्यायालय के निर्देश के अनुसारए अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी के पक्ष में बैंक ड्राफ्ट के माध्यम से 50,000/- रुपये की राशि जमा की थी। आगे प्रस्तुत

किया गया कि उच्च न्यायालय इस बात को समझने में विफल रहा है कि वर्तमान मामले में दोनों पिछले 14 वर्षों से अलग.अलग रह रहे हैं और इस बीचए प्रत्यर्थी को भुवनेश्वर में नौकरी मिल गई है और इसके अलावा अपीलार्थी और उसके परिवार के सदस्यों को भी नौकरी मिल गई है। कई बार प्रत्यर्थी को उसके वैवाहिक घर ले जाने की कोशिश की गई किन्तु कोई फायदा नहीं हुआ। आगे यह प्रस्तुत किया गया कि उच्च न्यायालय इस बात को समझने में विफल रहा है कि प्रत्यर्थी द्वारा सास और देवर द्वारा लगाए गए दहेज की मांग के आरोप प्रत्यर्थी के अपने बेवजह के रुख का बचाव करने के लिए मनगढ़ंत हैं। इस तथ्य से स्पष्ट है कि यद्यपि प्रत्यर्थी ने अपना वैवाहिक घर वर्ष 1991 में ही छोड़ दिया थाए लेकिन उसने अपनी सास और बहनोई के खिलाफ महिला आयोग के समक्ष शिकायत दर्ज कराने का विकल्प वर्ष 1988 में ही चुना था अर्थात् लगभग 7 वर्ष बाद।

श्री रंजन मुखर्जी ने आगे कहा कि दोनों पक्ष लगभग 14 वर्षों से अलग.अलग रह रहे हैं, जिसका अर्थ है कि विवाह पूरी तरह से टूट गया है और विवाह के इस तरह टूटने के कारणए पक्षों के बीच विवाह पूरी तरह से समाप्त हो गया है। श्री रंजन मुखर्जी ने अपने तर्को के समर्थन में इस न्यायालय के निम्नलिखित निर्णयों का हवाला दिया।

1. अंजना किशोर बनाम पुनीत किशोर, (2002) 10 एससीसी 194 (तीन जजों की बेंच)

2. स्वाति वर्मा (श्रीमती) बनाम राजन वर्मा और अन्य (2004) 1 एससीसी 123

3. सनत कुमार अग्रवाल बनाम नंदिनी अग्रवाल , (1990) 1 एससीसी 475

4. अध्यात्म भट्टर अलवर बनाम अध्यात्म भट्टर श्री देवी , (2002) 1 एससीसी 308

5. जीवीएन कामेश्वर राव बनाम जी. जाबिली , (2002) 2 एससीसी 296

सुश्री एस.एस.पणिक्कर, प्रत्यर्थी के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि पारिवारिक न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी की याचिका और साक्ष्य भिन्न थे और पुष्टि के अभाव में प्रत्यर्थी/पत्नी द्वारा परित्याग या क्रूरता के संबंध में अपीलार्थी का आरोप अपीलार्थी द्वारा साबित नहीं किया जा सका। यह प्रस्तुत किया गया कि उच्च न्यायालय सही निष्कर्ष पर पहुंचा है कि पारिवारिक न्यायालय का आदेश गलत था क्योंकि इसे प्रत्यर्थी के साक्ष्य को गलत तरीके से उद्धृत करके पारित किया गया था। वह आगे यह भी कहेंगी कि उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेश में कोई त्रुटि नहीं है, भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप

की आवश्यकता वाली त्रुटि तो दूर की बात है। यह प्रस्तुत किया गया कि पारिवारिक न्यायालय का आदेश प्रथम दृष्टया अवैध, गलत है और पारिवारिक न्यायालय पक्षकारान द्वारा दिए गए सबूतों को उचित परिप्रेक्ष्य में ध्यान में रखने में विफल रहा। प्रत्यर्थी के विद्वान वकील के अनुसार साक्ष्य के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाएगा कि अपीलार्थी ने अपने साक्ष्य में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि वह स्वयं प्रत्यर्थी को 23.10.1991 को उसके पिता के घर ले गया था, जो कि कथन के विपरीत था। तलाक की याचिका, जिसमें उन्होंने एक विशिष्ट आरोप लगाया था कि प्रत्यर्थी ने अपनी मर्जी से वैवाहिक घर छोड़ा था। उसने प्रत्यर्थी को अपने साथ वैवाहिक जीवन जीने के लिए राजी करने के लिए न तो कोई पत्र लिखा था और न ही कोई रिश्ता लिया था और वह प्रत्यर्थी के साथ रहने और वैवाहिक संबंध जारी रखने के लिए भी इच्छुक नहीं था। प्रत्यर्थी के विद्वान वकील ने हमारा ध्यान दोनों पक्षों द्वारा पेश किए गए साक्ष्यों और न्यायालय द्वारा साक्ष्यों को गलत तरीके से उद्धृत करने की ओर आकर्षित किया। इसके विपरीत प्रत्यर्थी ने अपने साक्ष्य में कहा था कि 23.10.1991 के बाद वह अपने पिता और अन्य रिश्तेदारों के साथ वैवाहिक घर में रही थी, लेकिन अपीलार्थी ने उसे स्वीकार करने से इनकार कर दियाए इसलिए उसे अपने माता-पिता के घर में आश्रय लेना पड़ा। अपीलार्थी प्रत्यर्थी के माता-पिता के घर जाने की शर्तों पर था कि उसने फरवरी, 1996 तक अपीलार्थी के साथ वैवाहिक जीवन व्यतीत किया थाए वर्ष 1997 में भी

प्रत्यर्थी अपीलार्थी के साथ जयपुर में किराए के मकान में रही थी, लेकिन फिर से उसे छोड़ने के लिए मजबूर किया गया था ससुराल वालों द्वारा उत्पीड़न के कारण वह जयपुर में अपीलकर्ता के साथ रहने को तैयार थी और अपने वैवाहिक संबंधों को जारी रखने में रुचि रखती थी। विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि पारिवारिक न्यायालय इस बात पर ध्यान देने में विफल रहा है कि पत्नी ने सुलह अधिकारी के समक्ष और पारिवारिक न्यायालय के समक्ष साक्ष्य और दलीलों में स्पष्ट रूप से कहा था कि वह पति के साथ रहने में रुचि रखती है और इच्छुक है और इस पर विचार कर रही है। दूसरे पक्ष ने स्पष्ट रूप से कहा था कि वह वैवाहिक संबंध जारी नहीं रखना चाहता। विद्वान वकील ने आगे तर्क दिया कि अपीलार्थी प्रत्यर्थी के खिलाफ क्रूरता के आरोपों को साबित करने में भी सक्षम नहीं है और अपीलार्थी ने केवल आरोप लगाया था कि प्रत्यर्थी का आचरण वैवाहिक घर में वापस नहीं आना, सामान्य सहवास स्थापित करने में उसके सहयोग की कमी है, ससुर का अंतिम संस्कार न करने और अपीलार्थी के भाई के विवाह समारोह में भाग न लेने और सास और बहनोई के खिलाफ झूठी शिकायत दर्ज करने से उसने बार-बार अपीलार्थी को सामाजिक शर्मिंदगी पैदा की। अपीलार्थी को मानसिक अवसाद, पीड़ा और निराशा हुई, जो मानसिक क्रूरता के समान है। वह आगे यह भी प्रस्तुत करेगी कि जो आरोप परित्याग के लिए आवश्यक हैं वे वर्तमान मामले में मौजूद नहीं हैं। यह भी प्रस्तुत किया गया कि अपीलार्थी ने वर्ष 1998 में तलाक की

याचिका दायर की, अर्थात् 23.10.1991 को पत्नी द्वारा कथित परित्याग के लगभग 7 साल बाद और अपीलार्थी ने तलाक की याचिका दायर करने में अस्पष्ट देरी के लिए कोई वैध स्पष्टीकरण नहीं दिया है। अपनी दलीलों को समाप्त करते हुए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि अपीलार्थी परित्याग के आधार पर तलाक की डिक्री का हकदार नहीं था और वह और उसके परिवार के सदस्य प्रत्यर्थी द्वारा वैवाहिक घर छोड़ने के लिए स्वयं जिम्मेदार थे और इसलिए अपीलार्थी को लाभ लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती। हिंदू विवाह अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन कर तलाक की डिक्री प्राप्त करना स्वयं की गलती है, उन्होंने प्रस्तुत किया कि उच्च न्यायालय ने पारिवारिक न्यायालय के आदेश में एक स्पष्ट त्रुटि को ठीक करने में सही कदम उठाया क्योंकि पारिवारिक न्यायालय का आदेश प्रत्यर्थी और अपीलार्थी के साक्ष्य पर विचार किए बिना पारित किया गया था।

हमने अपीलार्थी के वकील द्वारा प्रस्तुत तर्कों दिए गए सबूतों और उद्धृत किए गए निर्णयों को ध्यानपूर्वक अवलोकन किया। प्रत्यर्थी के विद्वान वकील ने अपने तर्कों के समर्थन में किसी निर्णय का हवाला नहीं दिया है।

यह सबसे दुर्भाग्यपूर्ण मामला है जहां दोनों पक्ष अपनी शादी के 7 महीने की अवधि से अधिक अपने वैवाहिक संबंधों को जारी नहीं रख सके। दोनों पक्षों के बीच विवाह 05.03.1991 को हुआ और यह अपीलार्थी का विशिष्ट मामला है कि प्रत्यर्थी ने 22.10.1999 को उसे छोड़ दिया और

फिर कभी अपने वैवाहिक घर में नहीं लौटी। आज स्थिति यह है कि दोनों पक्ष लगभग 14 वर्षों से अलग-अलग रह रहे हैं, जिसका अर्थ है कि विवाह में अपूरणीय विच्छेद हो गया है और विवाह के ऐसे विच्छेद के कारण दोनों पक्षों के बीच विवाह पूरी तरह से समाप्त हो गया है। अपीलार्थी के विद्वान वकील ने तर्क दिया कि ऐसी शादी को कागज पर जीवित रखने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा, जो केवल पक्षों की पीड़ा को बढ़ाएगा। इसलिए वह प्रार्थना करेंगे कि चीजों की उपयुक्तता और न्याय के हित में दोनों पक्षों के बीच विवाह को तलाक की डिक्री द्वारा तुरंत समाप्त कर दिया जाए। हमने पारिवारिक न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों का अध्ययन किया। पारिवारिक न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों ने पक्षों के बीच सुलहध्मेल.मिलाप लाने के प्रयास किए। इस संबंध में पारिवारिक न्यायालय ने स्पष्ट निष्कर्ष दिया कि सुलह को प्रभावित करने के काफी प्रयासों के बावजूद प्रत्यर्थी के अपने ससुराल वालों से अलग रहने की जिद के कारण ऐसा नहीं हो सका। यह पूर्णतया अव्यवहारिक समाधान था।

इस संदर्भ में हम पेपर बुक के पृष्ठ 35 को उपयोगी रूप से देख सकते हैं जो इस प्रकार है-

> "जो भी हो पारिवारिक न्यायालय अधिनियम की धारा 9 के अनुसार न्यायालय से जुड़े सुलह कक्ष द्वारा और साथ ही इस

न्यायालय द्वारा पक्षों के बीच समझौते के लिए काफी प्रयास किए गए, लेकिन प्रत्यर्थी/पत्नी ने जोर दिया और अपने ससुराल वालों से अलग रहना चाहती थी जो याचिकाकर्ता/पति के लिए पूरी तरह से अव्यवहारिक था।"

इसके अलावाए अक्टूबर, 1991 से आज तक प्रत्यर्थी ने अपने वैवाहिक घर में वापस जाने के लिए अपनी ओर से कोई कदम नहीं उठाया है। उक्त तथ्य पारिवारिक न्यायालय के समक्ष उसके स्वयं के बयान से परिलक्षित होता है, जिसमें उसने निम्नानुसार गवाही दी है;

"23.10.1991 को याचिकाकर्ता ने मुझे मेरे पिता के घर में छोड़ दिया। मैं अपने पिता और अन्य रिश्तेदारों के साथ वैवाहिक घर चली गई लेकिन याचिकाकर्ता ने परेशानी पैदा की और मुझे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार नहीं किया। इसलिए मैं अपने पिता के पास चली आई और वहां शरण ली है।"

"याचिकाकर्ता ने 23.10.1991 को शादी के बाद मुझे मेरे पिता के घर में छोड़ दिया। यह तथ्य नहीं है कि मैं याचिकाकर्ता को छोड़कर अपने वैवाहिक घर से स्वत: चली आई। मैं फिर से आई और दिसंबर, 1991 से लेकर वैवाहिक

घर में रही। फरवरी 1992 और उसके बाद मैं अपने पिता के घर आ गयी।"

पारिवारिक न्यायालय ने अपीलार्थी के पक्ष में तलाक का फैसला पारित करने के लिए ठोस और विश्वसनीय कारण बताए हैं। यह आश्वस्त होने के बाद कि पक्षों के बीच पुनस्र्थापना या सुलह की कोई संभावना नहीं है, विशेष रूप से महिला आयोग के समक्ष प्रत्यर्थी द्वारा दायर की गई शिकायत के कारण, पारिवारिक न्यायालय ने मुकदमेबाजी और आपसी कड़वाहट को शांत करने की दृष्टि से तलाक की डिक्री को सही तरीके से पारित किया।

उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने आक्षेपित फैसले से पारिवारिक न्यायालय के निष्कर्ष को उलट दिया है। उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों ने अपीलार्थी के विरुद्ध दो बिंदुओं पर फैसला सुनायाए अर्थात्र .

(ए) पारिवारिक न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी के साक्ष्य को गलत तरीके से उद्धृत करना और

(बी) प्रत्यर्थी द्वारा वैवाहिक घर छोड़ने के संबंध में अपीलार्थी की असंगत दलील।

हमारे विचार में, उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों द्वारा विचार किए गए उपरोक्त दोनों बिंदुओं को मामले की योग्यता के आधार पर निष्कर्ष के रूप में नहीं माना जा सकता है।

हमारे विचार में अपीलार्थी और प्रत्यर्थी को अलग हुए 14 साल बीत चुके हैं और अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के सामान्य वैवाहिक जीवन फिर से शुरू करने की कोई संभावना नहीं है, भले ही प्रत्यर्थी अपने पति के साथ जुड़ने की इच्छुक हो। अपीलार्थी, प्रत्यर्थी के बीच विवाह का अपूरणीय विघटन हो गया है। प्रत्यर्थी ने अपने ससुर की मृत्यु के दौरान और अपने बहनोई के विवाह समारोह के दौरान अपनी अनुपस्थिति के बारे में भी चुप रहना पसंद किया है। महिला आयोग के समक्ष की गई शिकायत अपीलार्थी को दहेज उत्पीड़न के लिए दोषी नहीं ठहराती हैए हालांकि प्रत्यर्थी ने पारिवारिक न्यायालय के समक्ष अपनीसाक्ष्य में अपीलार्थी पर दहेज उत्पीड़न का आरोप लगाया है। गौरतलब है कि शादी के 7 साल बाद महिला आयोग के समक्ष एक शिकायत दर्ज कराई गई थी जिसमें शादी के शुरुआती वर्षों के दौरान सास और देवर द्वारा दहेज के लिए प्रताड़ित करने का आरोप लगाया गया था। उक्त शिकायत 1998 में दायर की गई थी, अर्थात् हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13 के तहत अपीलार्थी द्वारा दायर आवेदन पर 27.03.1997 को पारिवारिक न्यायालय द्वारा नोटिस जारी किए जाने के बाद ही पारिवारिक न्यायालय ने रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों की जांच

करने और गवाहों के आचरण को देखने के बाद निष्कर्ष निकाला कि अपीलार्थी ने साबित कर दिया है कि प्रत्यर्थी न केवल क्रूर है बल्कि 7 साल से अधिक समय से उसे छोड़ दिया है। आज की तारीख में परित्याग को 14 वर्ष से अधिक हो गए हैं और इसलिए हमारे विचार में अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच विवाह का अपूरणीय विघटन हो गया है। यहां तक कि पारिवारिक न्यायालयके समक्ष सुलह अधिकारी ने भी अपनी रिपोर्ट दी कि प्रत्यर्थी इस शर्त पर अपीलार्थी के साथ रहने को तैयार था कि वे उसके परिवार से अलग रहें। प्रत्यर्थी ने अपनी साक्ष्य में इस तथ्य पर विवाद नहीं किया था कि अपीलार्थी और उसके परिवार द्वारा अपीलार्थी के साथ वैवाहिक जीवन जीने के लिए उसे वैवाहिक घर में वापस लाने का प्रयास किया गया है। इसके अलावा, कई वर्षों से प्रत्यर्थी द्वारा अपीलार्थी को छोड़ दिए जाने के कारण पिछले कुछ वर्षों में अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच संबंध तनावपूर्ण हो गए हैं। इन परिस्थितियों में, अपीलार्थी ने पारिवारिक न्यायालय के समक्ष पृथक्करण के दोनों तथ्यों के साथ-साथ शत्रुता के दोनों तथ्यों को साबित कर दिया था, जो परित्याग के आवश्यक तत्व हैं। प्रत्यर्थी द्वारा पारिवारिक न्यायालय के समक्ष पेश किए गए साक्ष्य पारिवारिक नयायालय के समक्ष उसके द्वारा उठाए गए रुख को झुठलाते हैं। अपीलार्थी के प्रति प्रत्यर्थी द्वारा की गई क्रूरता के पर्याप्त उदाहरण पारिवारिक न्यायालय के समक्ष पेश किए गए और पारिवारिक न्यायालय तलाक की डिक्री देने के लिए आश्वस्त हो गया। प्रत्यर्थी के ससुराल वालों

द्वारा उत्पीड़न बाद में सोचा गया था क्योंकि प्रत्यर्थी द्वारा शादी और परित्याग के 7 साल के अंतराल के बाद यह आरोप लगाया गया था। अपीलकर्ता, प्रत्यर्थी को उसके वैवाहिक घर में वापस लाने के अपने प्रयासों में विफल रहा है और उसे प्रत्यर्थी के बिना अपने मृत पिता का अंतिम संस्कार करने के आघात का सामना करना पड़ा है और प्रत्यर्थी द्वारा उसके और उसके परिवार के साथ किए गए दुर्व्यवहार का सामना करना पड़ा है। हमारी राय में, तलाक की डिक्री के लिए पारिवारिक न्यायालय से संपर्क करने के अलावा कोई अन्य प्रभावी उपाय नहीं था।

निम्नलिखित दो मामलों में, इस न्यायालय ने एक सुसंगत दृष्टिकोण अपनाया है कि जहां यह पाया जाता है कि पक्षों के बीच विवाह अपरिवर्तनीय रूप से टूट गया है और बेकार हो गया है, स्थिति की तात्कालिकता की मांग है, ऐसे विवाह का विघटन पीड़ा और कड़वाहट को खत्म करने के लिए तलाक का फरमान जारी हो;

(ए) अंजना किशोर बनाम पुनीत किशोर (2002) 10 एससीसी 194

(बी) स्वाति वर्मा (श्रीमती) बनाम राजन वर्मा और अन्य (2004) 1 एससीसी 123

इसी तरह निम्नलिखित तीन मामलों में, इस न्यायालय ने देखा है कि परित्याग का प्रश्न, प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से

निकाला जाने वाला एक अनुमान है और उन तथ्यों को उद्देश्य के रूप में देखा जाना चाहिए, जो पृथक्करण के वास्तविक कार्य से पहले और बाद में उन तथ्यों या आचरण और इरादे की अभिव्यक्ति से प्रकट होता है;

(ए) सनत कुमार अग्रवाल बनाम नंदिनी अग्रवाल (1990) 1 एससीसी 475

(बी) अध्यात्म भट्टर अलवर बनाम अध्यात्म भट्टर श्री देवी (2002) 1 एससीसी 308

(सी) जीवीएन कामेश्वर राव बनाम जी जाबिली (2002) 2 एससीसी 296

श्री रंजन मुखर्जी द्वारा प्रस्तुत दलील कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच विवाह, सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए मृत हो गया है, पुनस्र्थापना की कोई संभावना नहीं हो सकती है और यह कि विवाह को अंत तक लाना बेहतर था, स्वीकृति और प्रवर्तन की आवश्यकता थी।

चंद्रकला त्रिवेदी (श्रीमती) बनाम डॉ. एसपी त्रिवेदी, (1993) 4 एससीसी 232 में, जो कि बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा क्रूरता के आधार पर पारित तलाक की डिक्री के विरूद्ध इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत अपील है। जब छुट्टी दी गई तो इस न्यायालय ने कहा कि वे छुट्टी दे रहे हैं क्योंकि उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि पक्षों के बीच विवाह सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए समाप्त हो चुका है और विवाह की निरंतरता का मतलब

केवल यह होगा कि पक्ष एक-दूसरे के विरूद्ध कड़वाहट में अधिक वर्ष बिताएंगे। चूँकि पति उचित भरणपोषण या स्थायी गुजारा भत्ता देने की स्थिति में था, इसलिए इस न्यायालय ने विशेष अनुमति दे दी। अंतिम सुनवाई के समय, इस न्यायालय ने निष्कर्षों को हटा दिया और हालांकि बॉम्बे उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप नहीं करने का निर्णय लिया। इस न्यायालय के समझाने पर पति, पत्नी को एक ऐसे इलाके में एक बेडरूम का फ्लैट उपलब्ध कराने के लिए सहमत हो गया, जहां 3 और 4 लाख रुपये के बीच उपलब्ध हो सकता है इसलिए अपील को खारिज करते हुए, इस न्यायालय ने पति को पत्नी के लिए एक फ्लैट खरीदने और पारिवारिक न्यायालय में अपीलार्थी के नाम पर डिमांड ड्राफ्ट के माध्यम से 2 लाख रु/- अतिरिक्त राशि जमा करने का निर्देश दिया।

वी. भगत बनाम डी. भगत (श्रीमती), (1994) 1 एससीसी 337 = एआईआर 1994 एससी 710 के मामले में, इस न्यायालय ने मानसिक क्रूरता के आधार पर और विवाह के अपूरणीय विघटन और अनोखी स्थिति को ध्यान में रखते हुए विवाह को समाप्त करने की अनुमति दी थी। मामले की परिस्थितियों में यह माना गया कि पत्नी के खिलाफ व्यभिचार के आरोप साबित नहीं हुए, जिससे उसका सम्मान और चरित्र सही साबित हुआ। इस न्यायालय ने दूसरे विकल्प की खोज करते हुए पाया कि तलाक

की याचिका 8 साल से अधिक समय से लंबित है और दोनों पक्षों के जीवन का एक अच्छा हिस्सा इस मुकदमेबाजी में व्यतीत हो गया है और अभी तक अंत दिखाई नहीं दे रहा है और आरोप लगाए गए हैं। एक-दूसरे के खिलाफ की गई याचिका और पक्षों द्वारा किए गए प्रतिवाद से यह पता चलेगा कि साथ रहने का कोई सवाल ही नहीं है और मेल-मिलाप की संभावना भी नहीं है। इस न्यायालय ने एआईआर के पृष्ठ 720 पर इस प्रकार टिप्पणी की है;

> "इस मामले से अलग होने से पहले, हम एक स्पष्टीकरण संलग्न करना आवश्यक समझते हैं। केवल इसलिए कि आरोप और प्रत्यारोप हैं, तलाक की डिक्री का पालन नहीं किया जा सकता है। न ही तलाक की कार्यवाही के निपटान में देरी करना अपने आप में एक आधार होना ही चाहिए। वास्तव में कुछ असाधारण विशेषताएं हैं, जो पूरी सुनवाई के बिना दलील ; और अन्य स्वीकृत सामग्री के आधार पर तलाक देने की गारंटी देती हैं। विवाह का अपरिवर्तनीय टूटना अपने आप में एक आधार नहीं है। लेकिन यह निर्धारित करने के लिए रिकॉर्ड पर साक्ष्य की जांच करते समय कि क्या आरोप लगाए गए हैं और दी जाने वाली राहत का निर्धारण करते समय, उक्त परिस्थिति को निश्चित

रूप से ध्यान में रखा जा सकता है। यहां हमारे द्वारा उठाए गए असामान्य कदम का सहारा केवल एक असाध्य विवाद को दूर करने के लिए किया जा सकता है, जब न्यायालय इसे दोनों पक्षों के हित में पाता है।"

रोमेश चंदर बनाम सावित्री एआईआर 1995 एससी 851 = 1995 एआईआर एससीडब्ल्यू 647 में दिया गया निर्णय एक और मामला है जहां इस न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत अपनी शक्तियों में पति के घर के हस्तांतरण के अधीन विवाह के विघटन का निर्देश दिया था। पत्नी के नाम पर ड उस मामले में पार्टियों ने 25 वर्षों तक पति-पत्नी के रूप में एक-दूसरे के साथ का आनंद नहीं लिया था, यह मुकदमेबाजी का दूसरा दौर है जो ट्रायल कोर्ट और हाई कोर्ट से होते हुए सुप्रीम कोर्ट तक पहुंच गया है। अपील क्रूरता पर आधारित थी। निचली दोनों अदालतों ने पाया है कि आरोप साबित नहीं हुआ और परिणामस्वरूप इसे तलाक का दावा करने का आधार नहीं बनाया जा सकता। हालाँकि इस न्यायालय ने पहले के निर्णयों का पालन करने और संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए निर्देश दिया कि अपीलकर्ता और प्रत्यर्थी के बीच विवाह इस शर्त पर भंग हो जाएगा कि अपीलकर्ता चार महीने के भीतर अपनी पत्नी के नाम पर घर स्थानांतरित कर दे।

आदेश की तारीख और विघटन तब प्रभावी होगा जब घर हस्तांतरित हो जाएगा और कब्जा पत्नी को सौंप दिया जाएगा।

उपरोक्त तीन मामलों में तथ्य और परिस्थितियाँ बताती हैं कि पुनस्थापना असंभव है। हमारा मामला भी ऐसा ही है। इसमें कोई विवाद नहीं है कि अपीलकर्ता और प्रत्यर्थी पिछले 14 वर्षों से दूर रह रहे हैं। यह भी सच है कि इस मुक़दमे में दोनों पक्षों के जीवन का एक बड़ा हिस्सा ख़त्म हो चुका है। जैसा कि इस न्यायालय ने देखा, अंत नजर नहीं आ रहा है। सुनवाई के समय विद्वान अधिवक्ता के माध्यम से पत्नी का कथन अव्यवहारिक प्रतीत होता है। यह भी रिकॉर्ड की बात है कि एक-दूसरे के प्रति नापसंदगी की आग भड़क रही थी।

इस मामले से अलग होने से पहले, हम निम्नलिखित बातें कहना जरूरी समझते हैं;

शादियां स्वर्ग में तय होती हैं। दोनों पक्षकार वापसी न करने की सीमा पार कर चुके हैं। कोई व्यावहारिक समाधान निश्चित रूप से संभव नहीं है। पार्टियां इस स्तर पर आपस में सामंजस्य नहीं बिठा सकती हैं और अपने अतीत को एक बुरे सपने की तरह भूलकर साथ नहीं रह सकती हैं। इसलिए हमारे पास अपील की अनुमति देने और उच्च न्यायालय के फैसले को रद्द करने और तलाक के लिए डिक्री देने वाले पारिवारिक न्यायालय के आदेश की पुष्टि करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं

है। पारिवारिक न्यायालय ने अपीलकर्ता को, प्रत्यर्थी को स्थायी गुजारा भत्ता के लिए 50,000/-रुपये का भुगतान करने का निर्देश दिया है और ऐसे निर्देश के अनुसार अपीलकर्ता ने बैंक ड्राफ्ट के माध्यम से राशि जमा कर दी थी। पक्षकारों की स्थिति और अपीलकर्ता की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए, जो आपराधिक मुकदमे का सामना कर रहा है और नौकरी से बाहर है और पत्नी की स्थिति पर भी विचार कर रहा है, जो कार्यरत है, हमें लगता है कि रुपये की अतिरिक्त राशि स्थायी गुजारा भत्ता के रूप में 1 लाख रुपये से न्याय की पूर्ति होगी। इसका भुगतान अपीलकर्ता को आज से 3 महीने के भीतर प्रत्यर्थी अरुंधति त्रिपाठी के पक्ष में आदाता खाता डिमांड ड्राफ्ट द्वारा करना होगा और जब डिमांड ड्राफ्ट तैयार किया जाएगा और प्रत्यर्थी को प्रस्तुत किया जाएगा तो विघटन प्रभावी होगा।

परिणामस्वरूप, सिविल अपील की स्वीकार जाती है। खर्च के सम्बंध में कोई आदेश नहीं होगा।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी विनित (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।